वनदोहन से जल-चक्र में असन्तुलन तथा पर्यावरणीय विकृतियाँ

डा. एस. पी. राय,
वैज्ञानिक 'सी'
राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, रूड़की

सृष्टि के विधिवत संचालन तथा पृथ्वी के सन्तुलन हेतु प्रकृति ने प्राणियों और तथाकथित निर्जीव-हवा,पानी, मिट्टी, चट्टान, पर्वत तथा अन्य सभी तत्वों को उनके अपने-अपने जीवन चक्र से बॉधा है। सभी सजीव व निर्जीव तत्व सतत् रूप से निरन्तर कार्य करते रहते हैं, तभी सृष्टि का संचालन होता है और पृथ्वी का सन्तुलन बना रहता है। सजीव प्राणी तथा किसी भी निर्जीव तत्व के जीवन चक्र में प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से परिवर्तन होने पर विविध पर्यावरणीय विकृतियों को जन्म मिलता है।

जल चक्र तथा उसकी विविध अवस्थाएं

जल चक्र क्या है? किस तरह से जल अपने जीवन की विविध अवस्थाओं को पार कर चक्र पूर्ण करता है? इस पर प्रकाश डालना प्रासंगिक होगा। सूर्य की गर्मी पाकर महासागरों का जल वाष्प के रूप में वायुमण्डल में पहुँच कर बादलों की रचना करता है। बादलों द्वारा ठन्डे प्रदेशों में जल हिम के रूप में तथा अन्य क्षेत्रों में वर्षा के रूप में धरातल में पहुँचाया जाता है। जल-चक्र का यह प्रथम चरण जल की "शैशवास्था" ।

वर्षा का जल पृथ्वी में पहुँचता है तो इसका कुछ भाग (10 से 18 प्रतिशत) पेड़ों की पत्तियों द्वारा रोक लिया जात है, जो पत्तियों के आकार पर निर्भर करता है। यह जल पुनः जलवाष्पीकरण की प्रक्रिया से वायुमंडल में वापस चला जाता है। वर्षा के जल का शेष भाग (90-82 प्रतिशत) पेड़ की पत्तियों से टपककर तथा पेड़ के तनों के सहारे (0.3 से 9 प्रतिशत) भाग जल पुनः कई मार्गो में वितरित होता है, जो धरातल पर घास व

झाड़ियों की जातियों उनकी सघनता, पेड़ो के गिरे हुए पत्ते तथा सड़े गले पत्तों की गहराई, जैविक तथा अजैविक मिट्टी की गहराई और मिट्टी के नीचे पैतृक चट्टान के स्वभाव पर निर्भर करता है। वषा के जल का 70 से 77 प्रतिशत भाग रह जाता है। मिट्टी इस जल के अधिकांश भाग को सोख लेती है और केवल 0.7 से 1 प्रतिशत भाग जिसे मिट्टी सोख नहीं पाती है, धरातल में चादर के रूप में बह कर समीप नदी में पहुंचता है। अर्थात वनाच्छादित क्षेत्रों में बाढ़ के लिए वर्षा के जल का मात्र 0.7 से 1 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध हो पाता है इसलिए बाढ़ नियंत्रित रहती है।

मिट्टी द्वारा सोखा गया जल नमी के रूप में जमा होता है जिसका अधिकांश भाग (45-55 प्रतिशत) वनस्पति द्वारा जलवाष्पीकरण की प्रक्रिया से पुनः वायुमंडल में वापस भेज दिया जाता है। वर्षा के सम्पूर्ण जल का बचा हुआ लगभग 20 से 25 प्रतिशत भाग भूमिगत जल के रूप में संचित होता है। इसी भूमिगत जल द्वारा कई घंटों/दिनों/हफ्तों/महिनों/वर्षो तक स्रोतों के रूप में जल भूमि के नीचे लम्बी यात्रा के पश्चात पुनः घरातल पर पहुँचता है। इन्हीं स्रोतों से छोटी-छोटी सरिताओं को जल मिलता है। यह जल-चक्र की युवास्था है। इस अवस्था में जल पर्वतों को काट-कर गहरी घाटियों का निर्माण करता है। गहरी घाटियों की कैद से मुक्त होकर जल जब मैदानी भाग में प्रवेश करता है तो यह जल की प्रोढ़ावस्था " होती है। इस अवस्था में उसमें उमंग व शक्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है, इसलिए सर्पाकार मार्ग बनाकर प्रवाहित होती है। मैदानी भाग तय करते-करते जल शक्ति लगभग क्षीण हो जाती है। यह

जल की "वृद्धावस्था" है। इस अवस्था में नदी का जल कई शाखाओं में पक्षी के पंजे की तरह वितरित होकर, पुनः अपनी पैतृक स्थली समुद्र में विलीन हो जाता है। यह जल के चक्र की समाप्ति है। इस प्रकार सतत् रूप में जल - चक्र क्रम चलता रहता है।

जल-चक्र द्वारा पृथ्वी में संतुलित जल वितरण

मानव शरीर की तरह पृथ्वी में भी दो तिहाई भाग जल का है, प्रकृति ने सृष्टि के संचालन तथा पृथ्वी के संतुलन हेतु जल-चक्र के माध्यम से आवश्यकतानुसार एक विशेष अनुपात में पृथ्वी में जल वितरण किया है। यह अनुपात कुछ इस प्रकार है- 97.2 : 2.14 : 0.61 : 0.009 : 0.005, अर्थात पृथ्वी के सम्पूर्ण जल का 97.2 प्रतिशत भाग समुद्र/महासागरों में, 2.14 प्रतिशत भाग धरातल में हिमखण्ड़ों और हिमनदों के रूप में (जो पृथ्वी के साठ वर्षो की वार्षिक वर्षा के बराबर है), 0.61 प्रतिशत भाग महाद्वीपों में भूमिगत जल के रूप में, 0.009 प्रतिशत भाग धरातल में नदियों, झीलों तथा तालाबों के रूप में तथा 0.005 प्रतिशत भाग धरती में नमी के रूप में व्याप्त है। जल-चक्र द्वारा ही प्रतिवर्ष महाद्वीपों में इन विभिन्न नैसर्गिक जल भण्डारों की क्षतिपूर्ति की जाती है। जल चक्र में किसी भी प्रकार के प्राकृतिक तथा कृत्रिम रूप से व्यवधान का सीधा प्रभाव उपर्युक्त नैसर्गिक धरातलीय जल-भण्डारों पर पड़ता है।

जल चक्र की अवधि

जल समस्त प्राणी -जगत का जीवनदाता है। इसीलिए स्वच्छ पर्यावरण तथा किसी क्षेत्र की सन्तुलित पारिस्थितिकी के निर्धारण में जल का सर्वाधिक योगदान है। क्षेत्र में स्वच्छ पर्यावरण व सन्तुलित पारिस्थितिकी का विकास, पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध होने पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि यह निर्भर करता है जल चक्र की अवधि पर। जिस क्षेत्र में जल चक्र की अवधि जितनी अधिक होगी उस क्षेत्र की पारिस्थतिकी उतनी ही सन्तुलित होगी और आस पास एक स्वच्छ व निर्मल पर्यावरण होग। वनविहीन क्षेत्र में जब वर्षा का जल पहुंचता है तो यह जल विकराल रूप (बाढ़) धारण कर अपनी पैतृक स्थली पहुचने के लिए क्रोधित रूप में तुरन्त ही चल पड़ता है। ऐसे क्षेत्रों के जल-चक्र की अवधि छोटा होती है जो मात्र घण्टों/दिनों/सप्ताह से लेकर महीनो तक होती है जबकि वनाच्छादित क्षेत्रों में जल चक्र की अवधि महीनों से लेकर वर्षों तक होती है।

वन विहीन क्षेत्र में जल चक्र में असन्तुलन

उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु प्रदेश जिसके अन्तर्गत मलेशिया, इण्डोनेशिया, फिलीपीन, अमेजन तथा कांगा बेसिन आदि का सम्मिलित रूप से विश्व का दस प्रतिशत भाग है, विश्व के सबसे घने वनों के क्षेत्र हैं। मानव ने इन क्षेत्रों में अत्यधिक मात्रा में वनदोहन का कार्य कर जल चक्र की अवधि को अत्यधिक छोटा कर दिया है। संवेदनशील हिमालय द्वितीय प्रमुख क्षेत्र है जहाँ जल - चक्र की अवधि में नाटकीय ह्रास हुआ है। विश्व के उष्णकटिबन्धीय आर्द्र जलवायु तथा शीत कटिबन्धीय क्षेत्रों के पर्वतीय वनविहीन भागों में गहन शोधों से ज्ञात हुआ है कि वर्षा के कुल जल का 30 से 60 प्रतिशत भाग बहकर तुरन्त ही बाढ़ का रूप ले लेता है (जबकि वनाच्छादित क्षेत्रों में वर्षा के कुल जल का मात्र एक प्रतिशत भाग बाढ़ के रूप में बहता है)। वर्षा के जल के शेष अधिकांश भाग को वाष्पीकरण की प्रक्रिया से वायुमण्डल में वापस भेज दिया जाता है। अल्प मात्रा में मिट्टी अपने मे नमी के रूप में संचित करती है और मात्र 0-5 प्रतिशत भाग भूमिगत जल के रूप में धरती के नीचे जमा हो पाता है।

इस प्रकार वनदोहन के पश्चात् जल-चक्र की अवधि बहुत ही कम हो जाती है तथा जल-चक्र की अल्पायु में ही समाप्ति हो जाती है।

असन्तुलित जल-चक्र से पर्यावरणीय समस्याएं

वनदोहन के पश्चात असंतुलित जल-चक्र के परिणामस्वरूप् जल के व्यवहार में आये दो परिवर्तन बहुत ही नुकसानदायक हैं:

वर्षा के जल के अधिकांश भाग (30-60 प्रतिशत) का कुछ ही घण्टों में बह जाना।

द्वितीय :भूमिगत जल भण्डार में वर्षा के जल का नगन्य अंश (0-5 प्रतिशत) ही पहुंच पान।

जल-चक्र के व्यवहार में उक्त परिवर्तन के कारण क्षेत्र की पारिस्थितिकी तथा पर्यावरण में तीव्र गति से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कुप्रभाव पड़ने लगता है।

प्रत्यक्ष प्रमुख भयावह कुप्रभावों में बाढ़ और भूस्खलनों में अप्रत्याशित वृद्धि, जल प्रदूषण, भूमि कटाव में साढ़ें तीन हजार गुना तक वृद्धि, जल स्रोतों में वर्ष प्रतिवर्ष जल की कमी, कुछ वर्षो के पश्चात जल-स्रोतों का पूर्णतः सूखना, सदावाहिनी सरिताओं का मौसमी होना, नदियों के ग्रीष्मकालीन जल में निरन्तर ह्रास होना तथा भूमिगत जल-तल में तीव्र गति से गिरावट आदि सम्मलित है।

वन-जल विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान

उन्नीसवीं सदी में जब वन-जल विज्ञान को जन्म मिला तभी से मानव को दोहन तथा जल-चक्र में असन्तुलन के भयावह परिणामों का ज्ञान हो गया था। 1863 में सर्वप्रथम वनदोहन से उपजी बुराईयों का विषय विवरण जी0पी0 मार्श ने अपनी पुस्तक मैन एण्ड नैचर में प्रस्तुत किया, जिसका पश्चिमी देशों में तीव्र गति से प्रचार हुआ। वहाँ की संवेदनशील जनता ने इन बुराईयों को शीघ्र ही समझा, मनन किया और एक आन्दोलन के रूप में वानिकी तथा वनसंरक्षण के कार्यो में जुट गये। पश्चिम में आज कुछ ऐसे भी देश हैं जिनके देश में पर्याप्त मात्रा में जंगल होते हुए भी पारिस्थितिकी के सन्तुलन में रहने तथा पर्यावरणीय विकृतियों से दूर रहने के लिए अपनी लकड़ी की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति आयात से करते हैं।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में ''इण्टरनैशनल यूनियन ऑफ फारेस्ट रिसर्च आर्गेनाईजेशन'' स्थापना के पश्चात् वन जलविज्ञान पश्चिमी देशों में वाद-विवाद का मुख्य विषय बना। 1893 में वियाना में इस संगठन की प्रथम गोष्ठी में वन तथा जलवायु, वन तथा जल स्रोत और भूमिगत जल तल पर वनस्पति के प्रभाव, बहस के मुख्य विषय बने। तत्पश्चात पश्चिमी देशों में वनों के प्रभाव, वन जल विज्ञान आदि शोध विषयों में तीव्र गति से विकास हुआ। विश्व में जिस देश के पास वनों के महत्व की जानकारी सबसे पुरानी है यह जानकारी सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों वर्ष पुरानी है। हजारों वर्ष पहले जहाँ वनदोहन दण्डनीय अपराध था, वहाँ वृक्षारोपण, वानिकी तथा वन संरक्षण जैसे उपचार आज भी अभी अपनी शैशवास्था में अनाथ रूप में हैं। ''रेन वाटर हारवेस्टिंग'' जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम जिसकी नितान्त आवश्यकता है, का तो अभी विधिवत वीजारोपड़ भी नहीं हो पाया है।